



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 5.2  
IJAR 2017; 3(4): 893-896  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
Received: 19-01-2017  
Accepted: 27-03-2017

विशाल कुमार झा  
ब्लॉक नं.-21, लॉट नं.-164  
प्रेमचन्द्र मार्ग, राजेन्द्र नगर  
पटना, बिहार, भारत

## विवेच्यकृति में रसपरिपाक विवेचन

विशाल कुमार झा

### प्रस्तावना:

काव्यात्मभूत 'रस' की परिचयात्मक जिज्ञासत्व के निराकरण में कहा जा सकता है कि जा सकता है कि सहृदय-हृदय में वासनारूप से स्थित रत्यादिरूप स्थायीभाव कविवर्णित विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के द्वारा अभिव्यक्त होने पर अस्वाद या आनन्दरूप रस की संज्ञा धारण करते हैं।

“काव्य को पढ़ने-सुनने या नाटक को देखने से हृदय में अवस्थित रति, शोक, उत्साह आदि भावों में से किसी एक के निष्पन्न होकर प्रकाशित हो जाने से जिस अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे दृश्य या श्रव्य काव्य में रस कहते हैं।

मानवहृदय भावों का महोदधि है। उसके अन्तःस्थल में अगणित भाव प्रसुप्तावस्था में रहते हैं। इन भावों को रति, शोक, उत्साह, हास, आश्चर्य, क्रोध, शम, जुगुप्सा आदि प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है। अनुकूल वातावरण प्राप्तकर तदनुसार उक्त भावों में से कोई भाव जाग्रत हो जाता है और वह पूर्णरूपेण प्रकाशित होकर अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। कुन्दमाला नाटक के प्रथम अङ्क में सूत्रधार, काव्यस्थापना के प्रसङ्ग में निम्नश्लोक को पढ़ता तथा श्रोता के हृदय में उत्सुकता या शोक का सञ्चार कर देता है।

“लङ्केश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति-  
रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन।  
निवसिता जनपदादपि गर्भगुर्वी  
सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम्॥”

यहाँ लङ्केश्वर के भवन में दीर्घकाल तक जगज्जननी जानकी रहती हैं। श्रोता के हृदय में रति अवस्थित हो जाती है। शोक हृदय में उमड़ जाता है कि लोकापवाद के भय से वह भावमयी सीता निर्वासित होती है। करुण का दृश्य 'गर्भगुर्वी' सीता है। जनपद से उस करुणावस्था में सीता का निर्वासन होता है। भावों की जागृति किस प्रकार होती है - 'सुरसरिता की लहरें प्रसुप्तावस्था में रहती हैं। जिस प्रकार, प्रस्त-प्रक्षेप करने पर तरङ्ग निष्पन्न हो जाता है, पृथ्वी पर जल पड़ने से भूमि सुगन्धमयी हो जाती है, उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव के संयोग से हृदय में सुषुप्तावस्था में स्थित भाव जाग्रत एवं उद्दीप्त होकर रसावस्था में निष्पन्न हो जाता है।

'निष्पन्न' का अर्थ पहले से स्थित वस्तु या भाव को प्रकाशित कर देना है, उसे स्पष्ट रूप से समक्ष ला देना है, उसका अनुभव करा देना है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों में सरोवरों के सलिल में लहरें प्रच्छन्न भाव में रहती हैं, भूमि में सुगन्ध आत्मसात् है। कारण रूप प्रस्तार और जल के उपस्थित होने पर वे निष्पन्न हो गई अर्थात् प्रकाशित हो गई हृदय में रतिभाव प्रसुपवस्था में होता है। विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भावों के कारण स्वरूप उपस्थित होने पर निष्पन्न या प्रकाशित हो जाता है।

Corresponding Author:  
विशाल कुमार झा  
ब्लॉक नं.-21, लॉट नं.-164  
प्रेमचन्द्र मार्ग, राजेन्द्र नगर  
पटना, बिहार, भारत

उदाहरणार्थ, रङ्गमञ्च पर शकुन्तला नाटक का अभिनय हो रहा है, दर्शक उसे देख रहे हैं। दुष्यन्त (आश्रय) के हृदय में शकुन्तला (आलम्बन) को देखकर 'रति' भाव जाग्रत हो जाता है। शकुन्तला के सरल सौन्दर्य, भू-भङ्ग, हास्य, मधुर बातों का तथा उपवन के रमणीय वातावरण से वह उदीप्त हो जाता है। दुष्यन्त के हृदय में रतिभाव जाग्रत होकर उसके कथनों और चेष्टाओं से अभिव्यक्त होने लगता है। बीच-बीच में रोमाञ्च आदि छोटे-छोटे भाव उत्पन्न होकर रति-भाव में अनतर्निहित होकर इसे पुष्ट करते हैं। इस प्रकार रति स्थायीभाव से शृङ्गारस निष्पन्न हो जाता है। अर्थात् दुष्यन्त और शकुन्तला सामान्य स्त्री-पुरुष के रूप में उनके सामने आ जाते और दुष्यन्त-शकुन्तला के भाव न रहकर सहृदय सामाजिकों के भाव हो जाते हैं। यहाँ सहृदय दर्शकों के भावों का साधारणीकरण या समाजीकरण होता है।

अथात् प्रत्येक सहृदय दर्शक अपने को दुष्यन्त होने का अनुभव करता और इस रूप में उसकी प्रेमिका या प्रियतमा शकुन्तला बन जाती है। इस प्रकार वह मूल पात्रों से तादात्म्य करके अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है और वही आनन्द रस कहलाता है।

“लोक व्यवहार में रति आदि भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं, वे नाटक या काव्य में रति आदि स्थायी भावों के कारण, कार्य और सहकारी कारण कहे जाकर क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं और विभावादिकों के द्वारा स्थायी भाव व्यक्त होकर 'रस' कहा जाता है।”

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट की भी यही रसदृष्टि है -

“कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।  
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाद्यकाव्ययोः॥”

रस शब्द 'रस्' धातु में 'अच्' प्रत्यय जोड़ने से बना है व्युत्पत्ति है-  
“आस्वद्यते इति रसः। अर्थात् जो आस्वादित किया जाय, वह रस है। 'चर्वणे सर्वसामान्ये स्वादित्केवलं कविः' इस सिद्धान्त के अनुसार सहृदय कवि इसका आस्वादन करता है। लोकप्रचलित रस के अनेक अर्थ होते हैं -

पदार्थरस के रूप में रस कषाय, तिक्त, कटु, लवण, अम्ल और मधुर होता है। आयुर्वेदीय रस भी प्रसिद्ध है।

ब्रह्मानन्द को भक्तिरस कहा गया है। काव्य में काव्यानन्द ही रस है। इस प्रकार 'रसे सारश्चमत्कारः' रस जीवन का सार है। वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'रस' शब्द का प्रयोग हुआ है, पर काव्यानन्द के रूप में नहीं।

तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार -

'रसो वै सः' अर्थात् वह ब्रह्मनिश्चय ही रस है और वह रस को पाकर आनन्दित हो जाता है।

सर्वप्रथम काव्यरस का शास्त्रीय विवेचन भरमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में किया। राजशेखर ने, नन्दिकेश्वर ने भरत को रस का प्रथम आचार्य माना है। अभिनवदर्पण के प्रणेता नन्दिकेश्वर को कोई-कोई रस का

प्रथम आचार्य कहते हैं। नाट्यशास्त्र से प्राप्त होनेवाला आनन्द ब्रह्मानन्द से भी अधिक अच्छा है।

भरतमुनि द्वारा प्रदत्त परिभाषा के अनुसार काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द से श्रेष्ठ न मानकर ब्रह्मानन्दसहोदर माना जाता है। ब्रह्मानन्द शाश्वत, नित्य और स्थायी है, जबकि काव्यानन्द क्षणिक और अनित्य है। जिस प्रकार निर्विकल्प समाधि में ध्यान करत हुआ योगी परमानन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार काव्यानन्द प्राप्ति की अवस्था में पाठक, श्रोता या दर्शक संसार से पूर्णतः विरक्त होकर आनन्द का अनुभव करता है। यही काव्यानन्द रस है।

“विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः”

भरतमुनि सम्मत परिभाषा के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग होने पर रस-निष्पत्ति होती है।

मम्मट ने काव्यप्रकार में ऐसा ही कहा है -

“व्यक्तः सर्वविभावाद्यैः स्थायीभावोरसः स्मृतिः”

साहित्यपदार्पणकार कविराज विश्वनाथ ने भी कहा है कि विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभावों के संयोग से व्यक्त होकर सहृदय-हृदय में स्थित रति आदि स्थायीभाव ही 'रसत्त्व' प्राप्त कर लेते हैं।

'सत्त्व' के उद्रेक के कारण वह रस अखण्ड, अद्वितीय, स्वयं प्रकाशस्वरूप आनन्दमय और चिन्मय होता है। इस रस के साक्षात्कार के समय अन्य ज्ञातव्य विषयों का स्पर्श तक नहीं होता और इसलिए वह ब्रह्मानन्द के समान होता है। इस रस का प्राण ऐसा अलौकिक चमत्कार होता है जिसकी उपलब्धि सहृदयव्यक्तियों को होती है।

उक्त परिभाषा में प्रमुख तत्त्व -

1. सत्वोद्रेक- रस के निष्पन्न होने पर मन से रोगुणी और तमोगुणी वृत्तियाँ निकल आती हैं और उसमें एक मात्र सत्त्व का साम्राज्य हो जाता है।
2. अखण्ड-रस अखण्ड होता है। विभाव, अनुभाव, सञ्चारीभाव, स्थायीभाव एवं आस्वादकर्ता का खण्डरूप में या पृथक्-पृथक् भाव नहीं होता, जैसे चीनी, इलायची, दूध इत्यादि से तैयार शर्वत हो पीने में चीनी आदि प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् अनुभव नहीं होता, शर्वत का एक अखण्ड माधुर्य ही प्राप्त होता है।
3. प्रकाशमय -रस एक बार आस्वाद्यमान होकर स्वयं प्रकाशित होता रहता है इसके लिए व्याख्याकार सहायक की आवश्यकता नहीं होती।
4. रस सदैव आनन्दमय होता है। स्थयीभाव शोक और क्रोध आदि से भी निष्पन्न क्यों न हो?
5. चिन्मय -रस चिन्मय होता है। आस्वाद्यमान रसोपभोक्ता के बीच किसी प्रकार का भावात्मक तिरोभाव नहीं होता।

6. रस के आस्वादन की अवस्था में रसोपभोक्ता की दृष्टि से सृष्टि की अन्य वस्तुओं का अस्तित्व लुप्त हो जाता है।
7. रसानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर होता है।
8. स लोकोत्तर चमत्कारपूर्ण होता है। इसके स्वाद में जो आनन्द मिलता है वह अलौकिक या लोकोत्तर होता है।
9. रसानुभूति होती है सहृदयों को, उसके इतर को नहीं होती।
10. आस्वाद्य एवं आस्वादक के बीच किसी प्रकार की भिन्नता का भाव नहीं हो जाता।

उपयुक्त विवेचन कानिष्कर्ष है कि 'सहृदयजनों' के हृदय में स्थित स्थयीभाव ही विभाव, अनुभाव एवं सञ्चारीभाव के संयोग से व्यक्त होकर रस का अभिधान धारण करता है। रस-सत्त्व के उद्वेग के कारण अखण्ड, अद्वितीय स्वयं प्रकाश स्वरूप, आनन्दमय, चिन्मय एवं अलौकिक चमत्कारपूर्ण होता है।

रसास्वाद के समय रसोपभोक्ता को सृष्टि के अन्य विषयों का स्पर्श तक नहीं होता और उसका रस से पृथक् व्यक्तित्व भी नहीं रहता है। रसास्वाद एवं रसनिष्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।

प्रश्न उठता है कि रस का आस्वाद कौन करता है?

रस का आस्वादक आश्रय कवि है - मूल पात्र या अभिनय करने वाले हैं, पात्र या सामाजिक हैं।

रत्यादि स्थायीभाव नायक-नायिकादि आलम्बनों से उत्पन्न होते हैं और वे विभावादि के संयोग से रसरूप में प्रकाशित होते हैं।

अतः रसानुभूति उन्हीं नायक-नायिकादि को होती है जो सामाजिक हैं, सहृदय हैं वे दुष्यन्त-शुकुन्तलादि के चरित्र काव्य को पढ़ते हैं या नाटक में देखते हैं। वे न सामाजिक के समक्ष हैं और न सामाजिकों से कभी उनका साक्षात्कार ही हुआ है। ऐसी परिस्थिति में दुष्यन्तादि के रति-जनित रस के अनुभव का आनन्द सामाजिकों को किस प्रकार हो सकता है। यह प्रश्न मनस्वी के मानसमराल को उद्वेजित करता है।

भरतमुनि द्वारा रस-निष्पत्ति की व्याख्या 'विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है, स्पष्ट नहीं है।

अतः भरत के परवर्ती विद्वानों द्वारा 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द को लेकर अनेक मतवाद खड़े हो गये हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

- क) भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद अथवा आरोपवाद ।
- ख) श्रीशङ्कु का अनुमित्तिवाद अथवा अनुमानवाद ।
- ग) भट्टनायक का भुक्तिवाद ।
- घ) आगिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद -

भट्टलोल्लट 'संयोग' का अर्थ 'कार्य-करण सम्बन्ध मानते और निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' मानते हैं। इसी कारण उनका मत उत्पत्तिवाद से अभिहित है।

1. रस की स्थिति मूल नायक में होती है। उसी से रस का सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ- 'पुष्पाटिका में सीता के साक्षात्कार के बाद रति-भाव उत्पन्न होकर प्रबल रूप में राम को अनुरक्त कर देता है। यही मूल रस है।

2. अभिनेता राम का अभिनय इस कुशलता से करता है कि दर्शक अनुकर्ता या आग्नेता को ही अनुकार्य या मूलनायक 'राम' मान लेता है। अर्थात् वह अभिनेता में ही मूल पात्रों का आरोप कर लेता है।
3. आलम्बनविभाव सीता के साक्षात्कार के बाद आश्रय राम के हृदय में रति स्थायीभाव पुष्प-वाटिका के रमणीय वातावरण से उद्दीप्त हुआ। स्वेद, रोमाञ्च, हर्ष आदि अनुभावों से प्रतीत होकर संचारीभावों से तीव्रता को प्राप्त करता है और रसरूप में परिणत हो जाता है।
4. रस मूलनायक राम में उत्पन्न होता है, परन्तु दर्शक को प्रतीत होता है कि अभिनेता ही मूल नायक राम है और रस उसी के हृदय में उत्पन्न हो रहा है। दर्शक अभिनेता के कुशल-अभिनल प्रभावित होकर उसमें मूल नायक का आरोप कर लेता है।
5. अभिनेता को रस-दशा में देखकर मानव सुलभ सहानुभूति के आधार पर दर्शक स्वयं को भी रसदशा में अनुभव करने लगता है और उसे भी रसानुभूति होने लगता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "सहृदय-दर्शक, श्रोता या पाठक अभिनेता के कुशल अभिनय से प्रभावित होकर उसमें मूल नायक का आरोप कर लेता है और मानव सुलभ सहानुभूति के आधार पर उनकी रसानुभूति होने लगती है।

शङ्कु का अनुमित्तिवाद

शङ्कु ने न्याय के आधार पर 'उत्पत्तिवाद' का खण्डन करते हुए अनुमित्तिवाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' या 'अनुमान' और संयोग का अर्थ अनुमानात् रखकर अनुमाप्य, अनुपापक सम्बन्ध बतलाया। उनके अनुसार रस 'अनुमाप्य' और विभावादि अनुमापक हैं। इसमें 'गम्य-गमक' सम्बन्ध है। विभाव (आलम्ब और उद्दीपन) अनुभाव (आलम्बन की चेष्टाएँ) और व्यभिचारी- ये तीनों रस के अनुमापक (अनुमान करानेवाले) हैं और रस उनके द्वारा अनुमेय हैं। जैसे अनुमापक धूम से अनुमाप्य अग्नि से होने का अनुमान हो जाता है, उसी प्रकार विभावादि के उपस्थित होने से रस होने का अनुमान हो जाता है। शङ्कु के अनुमित्तिवाद का सार निम्न प्रकार है - 'रस मुख्यतया मूलपात्रों में ही रहता है पर विभावादि द्वारा सामाजिकों का नट में रस का अनुमान हो जाता है।

शङ्कु ने 'चित्र-तुरङ्गन्याय' से अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि चित्र में बड़े घोड़े को देखकर सम्यक् ज्ञान की तरह यह नहीं कहा जा सकता है कि यह घोड़ा ही है और न मिथ्याज्ञान की तरह चित्र के घोड़े को पहले घोड़ा जानकर बाद में कहा जा सकता है कि यह घोड़ा नहीं है। संशय ज्ञान की तरह यह भी विकल्प नहीं किया जा सकता कि यह 'घोड़ा' है या नहीं और न सादृश्यज्ञान की तरह यह भी कहा जा सकता है कि 'यह घोड़ा जैसा है'।

उपर्युक्त चारों ज्ञानों से विलक्षण चित्र-तुरङ्ग ज्ञान के अनुसार जिस तरह अभिनेता को दुष्यन्तादि के वेश में देखकर ऐसा समझ लिया

जाता है कि यह दुष्यन्त है पुनः अभिनेता में सामाजिकों को विभावादि दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

अभिनेता अपने सफल अभिनय में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे ध्यान ही नहीं रहता कि वह किसी का अनुकरण कर रहा है। वह अपने को दुष्यन्तादि समझने लगता है। उदाहरणार्थ -

“त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।

दिवावसाने च्छायेव पुरो मूलं वनस्पतेः॥” अ.श.ना. 3/29

यहाँ दुष्यन्त शकुन्तला के प्रति कहता है -

‘दिन के शेष भाग में वृक्ष की जड़ के अग्रभाग की छाया की तरह तुम दूर रहकर भी मेरे हृदय में बस रहीं हो’

अभिनेता जब उक्त चेष्टाएँ अपने कौशल से व्यक्त करता है तब वे कृत्रिम होने पर भी कृत्रिम प्रतीत नहीं होती। इससे सामाजिक दुष्यन्तादि के रति आदि भावों का अनुमान करते हैं, तथापि उनमें रसानुभूति होने लगती है।